IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

भारतीय संस्कृति में तंत्रयोग की अवधारणा एवं भ्रांतियां

बैकुंठ बिहारी[1] and डॉ. सुषमा रानी[2]

[1]शोधार्थी, संस्कृत विभाग

[2] सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

ओ. पी. जे. एस. विश्वविद्यालय, राजस्थान

सारांश

मनुष्य की अमूल्य संपदा उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा के 'कृ' करणे धातु से निष्पन्न है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं प्रकृति' (मूल स्थिति), 'संस्कृति' (परिष्कृत स्थिति) और विकृति' (अवनति स्थिति)। जब 'प्रकृति' अर्थात अपरिपक्व वस्तु या धातु आदि को परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृत(सु-संस्कृत, सस्कारित अथवा शोधित) हो जाती है और जब यह बिगड़ जाता है तो विकृत हो जाता है। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी रहा है। यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज रहन-सहन आचार-विचार नवीन अनुसन्धान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है और सभ्य बनता है, सभ्यता' कहलाती है जोकि भौतिक क्षेत्र की प्रगति से सम्बंधित है। जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है।

मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों में | सुधार करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह भोजन से ही नहीं जीता, शरीर के साथ मन और आत्मा भी है। भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है, किन्तु इसके बावजूद मन और आत्मा अतृप्त ही बने रहते हैं। इन्हें सन्तुष्ट करने के लिए मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है, उसे संस्कृति कहते हैं। मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन होते हैं। सौन्दर्य की खोज करते हुए वह संगीत, साहित्य, मूर्ति, चित्र और वास्तु आदि अनेक कलाओं को उन्नत करता है। सुखपूर्वक निवास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संघटनों का निर्माण करता है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक सम्यक् कृति संस्कृति का अंग बनती है। इनमें प्रधान रूप से धर्म, दर्शन, सभी ज्ञान-विज्ञानों और कलाओं, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है।

भारतीय संस्कृति भी विश्व की एक ऐसी ही अत्यन्त प्राचीन और श्रेष्ठ संस्कृति रही है। जो लौकिकता, अधिभौतिकता और भोगवाद की व बजाय आध्यात्मवाद और आत्मतत्व व की भावना पर केन्द्रित रही है, मे

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

ISSN 2581-9429 IJARSCT

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

जिसका मूल लक्ष्य शान्ति, - सहिष्णुता, एकता, सत्य, अहिंसा स 1 और सदाचरण जैसे मानवीय मूल्यों प्र ए की स्थापना करके समस्त विश्व की वि आध्यात्मिक उन्नति करना है। इसमें वि सबक सुख के लिये, सबके हित में कार्य करने के उद्देश्य के साथ समस्त विश्व को अपना परिवार मानने की भावना अन्तर्निहित है। इस समग्र भारतीय संस्कृति के परिचय का मूल श्रोत एवं धरोहर हमारा प्राचीन साहित्य, शास्त्रीय नृत्य और स्थापत्य कला आदि हैं। मनीषियों द्वारा सत्य की चिरकालीन अन्वेषणा के अनन्तर प्रस्तुत यह ग्रन्थ अनुभवों की कसोटी पर भरपूर कसे गए हैं जो आज प्रमाण ग्रन्थों | तथा अपने प्रायोगिक पक्षों के रूप में हमें उपलब्ध हैं। इस सम्पूर्ण ज्ञान का उद्देश्य मात्र मानवीय चेतना के स्तर को सही मानक और दिशा प्रदान करना ही था। चेतना के विकास से तात्पर्य समग्र सर्वागीण विकास और समग्र स्वास्थ्य जो की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक हर स्तर से सम्बधित है। आज विज्ञान, मनोविज्ञान सभी इस बात से सहमत हैं, कि मनुष्य की चेतना का विस्तार सतत होता ही रहता है। यदि हम विज्ञानिक दृष्टिकोण से जाने तो मानवीय मस्तिष्क का केवल दश प्रतिशत भाग ही अधिकाधिक जागृत अवस्था में रहकर सभी कार्यों को करता है और शेष मस्तिष्कीय भाग सदा निष्क्रिय / सुषुप्त अवस्था में ही रहता है। आधुनिक जगत की इतनी उपलब्धिया केवल उसी दश प्रतिशत जागृत मस्तिष्क के कारण हमे प्राप्त है। चितनीय है की शेष सुप्त मस्तिष्कीय चेतना का यदि मानव उपयोग कर सके तो वह अपनी उपलब्धियों की सीमाओं का न जाने कितना ही बढ़ा सकता है। देवतुल्य जीवन धरा पर ही सभव हो सकता है। विज्ञान बतलाता है की मस्तिष्क के जो ये सुप्त केंद्र है उसे एक विशेष विधि के द्वारा एक साधना के द्वारा के द्वारा जागृत किया जा सकता है, जिसे हमारे दर्शन और तंत्रशास्त्र में चेतना का विस्तार कहते है। इस चेतना के विस्तार हेतु साधना के विषय में 'तंत्रशास्त्र में मुख्य प्रक्रिया या मुख्या साधना के रूप में योग का वर्णन किया जाता है।

प्रो. रामहर्ष सिह तंत्रयोग साधना की आधुनिक प्रासंगिकता के विषय में बतलाते हैं कि प्रो वैलेश तथा प्रो वेत्सन का कार्य योग के अनुसन्धान के परिपेक्ष में सराहनीय है जिन्होंने अपने अनुसंधानो से प्रमाणित किया कि महर्षि महेश योगी द्वारा प्रचारित योग ध्यानयोग मानव के मन एवं शरीर को काफी प्रभावित करता है। तत्र एवं योग को कदाचित जनसामान्य द्वारा मिन्न समझा जाता है परन्तु विद्रतजन इन्हें सर्वसम्मति से अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करते हैं, इन्हें परस्पर भिन्न समझने का एक सामान्य सा कारण योग तथा तंत्र का विस्तृत मुक्त दर्शन स्वरूप है। जिसे बिना स्वाध्याय के द्वारा मर्म को जाने बिना यह आन्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जैसे की अल्प ज्ञान के कारण ही योग को आज केवल शारीरिक अभ्यास तो कही तंत्र को केवल जादू टोना समझा जाना।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

सम्पूर्ण भारतीय योग साधना को दो वर्गो में बांटा जा सकता है।

1- दक्षिण मार्ग।

2- वाम मार्ग ।

'दक्षिण मार्ग ज्ञान मार्ग का प्रतीक है, जिसके प्रमुख ग्रन्थ द पातंजल योग दर्शन और ब्रह्मसूत्र (वेदात दर्शन) हैं। वहीं दूसरी ओर वाम मार्ग क्रिया मार्ग के रूप में जाना जाता है, वाममार्गी वह होते हैं, जो कौलाचार करते हैं अर्थात 'कौल' ग्रन्थों का अनुसरण करते हैं। इसके अतिरिक्त दोनों तरफ विशेषतः तन्त्रमार्ग में अनेक प्रकार की तत्सम साधनाएँ (बवहदपजपअम चतंबजपबमे) हैं, जो तंत्रयोग की अवधारणा को अधिक स्पष्ट करती है। कुछ विद्वानों के मूल्यांकन में ज्ञानयोग नकारात्मक पंथ है, जबकि तंत्रयोग अर्थात क्रियामार्ग सकारात्मक पथ है। [4]

तंत्रयोग (क्रियामार्ग) में व्यक्तित्व की सम्भावनाओं को अपने स्वभाविक विकास क्रम में प्रस्फुटित होने तथा अंतत समाप्त होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जबकी ज्ञान मार्ग में अपने आत्यन्तिक सत्य स्वरूप को सीधे अनुभव करते हुए व्यक्तित्व को पीछे छोड़ देते हैं। दोनों सम्प्रदायों का अंतिम उद्देश्य एक ही है. भौतिकता से उपर उठ चेतना को सही दिशान्तरिक करना और बढ़ाना। परन्तु दोनों पथ इसे अलग अलग ढंग अपनाते हैं. जहाँ एक ओर ज्ञानमार्गी उद्देश्य प्राप्ति हेतु प्रकृति को पूर्ण रूप से नकारता है, वहीं दूसरी और क्रियामार्गी (तत्रयोगी) की तुलना एक बीज को अपनी सभावनाओं के अनुसार प्रस्फुटित होकर, वृक्ष बनकर अपने आपको स्वय समाप्त कर देने में सहज सहायक होने की प्रक्रिया से की जाती है। इसीलिए इसे सर्वसाधारण साधक अथवा प्रथम कोटि के साधक भी आसानी से अपनाकर अपना मंगल कर सकते हैं। तात्रिक मार्ग को प्रवृत्ति मार्ग माना जाता। क्योंकि स्पंदन या इच्छाओं पर तय तक नियंत्रण नहीं किया जा सकता जब तक कि वे परिपक्व अथवा पूर्ण न हो जाये। अत तंत्रयोग गृहस्थ जीवन का अनुगामी है, न कि सन्यासी हो जाना ही मात्र इसका उद्देश्य है। इसी कारण इसे प्रवृत्ति मार्ग भी कहा जाता है। गृहस्थ में इसके पालन में यह आवश्यक है कि सासारिक मूल्यों में प्रवृत्ति अनासक्ति भाव से होनी चाहिए। इसी विषय को इंगित कर आद्यगुरु शंकराचार्य जी चर्पट स्त्रोत्र में कहते हैं-

योगरतो वा भोगरतो वा संगरतो व संगविहीनः ।
यस्य ब्रह्मणी रमते चित्तं नन्दति नन्दति नन्दत्येव ।।

तात्पर्य यही है कि भोग अर्थात गृहस्थ में होकर भी यदि चित्त सदा एकाग्र होकर ब्रह्म में रमण करता है तो वह साधक सदा प्रसन्नचित्त रहता है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

तंत्रयोग सम्बंधि व्याप्त भ्रांतियां

आज समाज तंत्रयोग के सही अर्थों से अधिकांश अनभिज्ञ है। इसका प्रमुख कारणों में कदाचिद कुछ भ्रामक साहित्य तथा इसके तथाकथित साधक ही है जिनका वास्तविकता से कोई सरोकार नही है। यदि संस्कृत कोष वर्णित अर्थों को भी देखे तो उनमें तंत्र शब्द का एक अर्थ जादू-टोना ग्रहण किया गया है। आज यदि किसी की इस परम गूढार्थ विद्या को जानने की रुचि उत्पन्न भी होती है तो उसके कारणों में एषणाओं कि पूर्ति अधिक देखी जाती है, तथा इसके बाद उनकी जानकारी का सर्वप्रथम स्रोत इन्टरनेट होता है तो दूसरा उससे जुड़ा भ्रान्तिपूर्ण साहित्य प्राय, जो आज भ्रान्ति के प्रमुख कारण है। तंत्रयोग, विज्ञान की खोज का विषय हो अथवा नहीं यह प्रमुख नही, परन्तु उसकी साधनाओं सम्बधित भ्रांतियों के निराकरण की आज नितांत आवश्यकता है, ताकि विज्ञान का भी यदि इस क्षेत्र में शोध कार्य करना चाहे तो सही दिशा में उसका मार्ग प्रशस्त हो सके, नहीं तो अल्पज्ञों के ज्ञान से विषय, सस्कृति तथा जिज्ञासु सभी को हानी है। तत्रयोग सम्बंधित भ्रांतियों में सर्वप्रमुख पञ्चमकार साधना को लेकर व्याप्त भ्रान्तियों सर्वाधिक है। तत्रयोग की साधना में पञ्च मकारों का एक विशिष्ठ स्थान है। इन पञ्चमकारों के अर्थ का अनर्थ होता सर्वथा देखा गया है, क्योकि इनका तात्विक अर्थ कुछ और शाब्दिक अर्थ कुछ और ही है, जिससे साधकगण एवं विषय के ज्ञाता सम्यक्तया परिचित है। इनके गुढ़ार्थों को सूत्रात्मक रूप से व्यक्त करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया उनको लेकर दुर्भावनावश कुतर्कियों ने सनातन धर्म को बहुत क्षति पहुँचायी है। प्राचीन काल से ही विद्वानों में यह एक विशेष लेखन शैली का प्रचार रहा जिसमे अनेक स्थानों पर गूढभाव में कुछ-कुछ लिखा गया, जिसे समझने वाले साधकों की संख्या सिमित ही रही। साधना की गहराई में जैसे-जैसे उतरने की बात हुयी है. कूटशब्दों का खेल भी खूब खेला गया है। बहुत जगह स्पष्ट द्वयर्थक शब्द आये हैं, तो कहीं क्लिष्ट शब्दोंका प्रयोग हैं, तो कहीं कूट (कोड) भी। सामान्य कर्मकाण्डी लोग अथवा साधक सीधे ही इसे लौकिक प्रयोजन में उतार लेते हैं। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है- 'विषस्य विषमौषधम' उक्ति सर्वप्रचलित सूक्ति है जिसका अर्थ है कि विष से ही विष की चिकित्सा की जाती है। संखिया एक महाविनाशकारी विष है, जो केवल पहाड़ी विच्छुओं के दश से प्राप्त होता है, जब वह विष की उष्मा से पीड़ित होकर पहाड़ों में दश मारता है। इसी संखिया को योग्य आयुर्वेदज्ञ शोधित करके औषधि के रुप में प्रयोग करता है, जिससे पीडित मनुष्य का जीवन रक्षण होता है। किन्तु अज्ञानी मनुष्य बिना इसे जाने-समझे सिर्फ वैद्य को ऐसा करता हुआ देख कर या सुनकर खुद भी करने बैठ जाएँ तो उसकी क्या गति होगी?

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

पंचमकार की साधना का सोपान कैसा होना चाहिये इसे तंत्रयोग के परिपक्व साधक अच्छी तरह समझते हैं। परन्तु यदि किसी अल्पज्ञ के हाथ पड़कर यह श्लोक अपने मूल अर्थ को देते हैं तो, इस साधना पद्धति को गर्हित या निकृष्ट की पक्ति में ढकेल देने के लिए यह स्वयं ही उत्तरदायी है लेखक नहीं। पंचमकार के परिचय में कुलार्णवतन्त्र, महानिर्वाणतन्त्र आदि ग्रन्थों में किंचित शब्द भेद सहित यह श्लोक आया है-

मद्य मास तथा मत्स्य मुद्रा मैथुनमेव च ।
शक्ति पूजा विधावाद्ये पंचतत्त्वं प्रकीर्तितम् ।।
मद्य मासं च मत्स्यश्च मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकारपचक देवि देवता प्रीतिकारकम् ।।

अर्थात मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, एवं मैथुन इन पाँचों को देव प्रिय क्रिया कहा गया तथा साधना प्रयोगों से पञ्च तत्व सिद्धि प्राप्ति बतलायीं। इन श्लोकों के श्रवण से अल्पज्ञ आसानी से मथे जाते रहे है जो महज भोगवादी प्रवृत्ति से आकृष्ट होकर तन्त्र के इस योग मार्ग पर कदम बढ़ाये और अत में परिणामल वे स्वयं भी डूबे और तन्त्र शास्त्र को भी कलकित किये। इनके अभ्यासों की सफलता गुरु सानिध्य, गुरुगम्यता, गुरु-आदेश/निर्देश एवं दीक्षा पर निर्भर है। इनके अभाव में सर्वथा पतन होना निश्चय है। आमतौर पर भोगवादी शब्द आकर्षित कर ही लेते हैं पर उस तक पहुँचने की स्थिति न रहने पर पतन स्वभावतः होता ही है। ये पंचमकार वस्तुतः पंचमहाभूतों की साधना है। स्थिति क्रम में या कि संहार क्रम में इनके सजावट का क्रम भी बदल जाता है। जैसे स्थितिक्रम में होगा- मैथुन, मांस, मद्य, मत्स्य, और मुद्रा। इसीके विपरीत कर दिया जाये तो संहार का क्रम। ये पांचो महा अमृत हैं किन्तु महाविष भी इसे ही कह सकते हैं। पंच मकारों की साधना अत्यावश्यक है, वाममार्गीय तन्त्र-साधना में, चाहे वह शैव कापालिक हो या कि शाक्त कौल। अष्टपाशों के मोचन में इन पचमकारों का सेवन बहुत ही सहायक है। अहंकार, अविद्या आदि हृद ग्रन्थियों के उच्छेदन के फलस्वरुप ही पूर्णतया निग्रन्थ (ग्रन्थिमुक्त) होकर ही वीरभाव की आगे की साधना की जा सकती है। फिलहाल वीरभाव क्या है यह प्रासंगिक नही परन्तु इसमें पंचमकारों का इसकी प्राप्ति में महत् योगदान है। इसलिए पंचमकारों की स्पष्ट चर्चा की जा रही है।

आगम में पंचमकार की साधना निम्न प्रकार से परिभाषित की गयी है।

1- मद्य :

सोमधारा क्षरेद या तु ब्रह्मरंधाद वरानने ।
पीत्वानंदमयास्तां यः स एव मद्यसाधकः ।।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

हे वरानने। ब्रह्मरंध्र यानि सहस्त्रार से जो अमृतधारा निकलती है, उसको पान करने से जो आनदित होते हैं उन्हें ही मद्यसाधक कहते हैं। ब्रह्मा का कमण्डलु तालुरच है और हरि का चरण सहस्त्रार है। सहस्त्रार से जो अमृत की धारा तालुरन्ध्र में जिव्हाग्र पर (ऊर्ध्वजिव्हा) आकर गिरती है वही मद्यपान है। इसीलिए ध्यान साधना हमेशा खेचरी मुद्रा में ही करनी चाहिए।

2- मास :

माँ शब्दाद्रसना ज्ञेया तदशान रसना प्रियान ।
सदा यो भक्षयेद्देवि स एव माससाधकः ।।

अर्थात मा शब्द से रसना और रसना का अंश है वाक्य जो रसना को प्रिय है। जो व्यक्ति रसना का भक्षण करते हैं यानी वाक्य संयम करते हैं उन्हें ही मास साधक कहते हैं। जिह्वा के संयम से वाक्य का संयम स्वतः ही खेचरी मुद्रा मश होता है। तालू के मूल में जीभ का प्रवेश कराने से बात नहीं हो सकती और इस खेचरीमुद्रा का अभ्यास करते करते अनावश्यक बात करने की इच्छा समाप्त हो जय है इसे ही मासभक्षण कहते है।

3- मत्स्य :

गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरत सदा।
तौ मत्स्यो भक्षयेद यस्तु सः भवेन मत्स्य साधकः ।।

अर्थात गंगा यानि इडा, और यमुना यानि पिंगला; इन दो नाड़ियों के बीच सुषुम्ना में जो श्वास-प्रश्वास गतिशील है वही मत्स्य है। जो योगी आतरिक प्राणायाम द्वारा सुषुम्ना में बह रहे प्राण तत्व को नियन्त्रित कर लेते है वे ही मत्स्य साधक है।

4- मुद्रा :

सहस्त्रारे महापदम कणिका मुद्रिता चरत।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवल पारदोपम।।
सूर्यकोटि प्रतीकाश चन्द्रकोटि सुशीतल।
अतीव कमनीयंच महाकुडलिनियुतं ।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते ।।

अर्थात सहस्त्रार के महापदम में कर्णिका के भीतर पारद की तरह स्वच्छ निर्मल करोड़ों सूर्य-चंद्रों की आभा से भी अधिक प्रकाशमान ज्योतिर्मय सुशीतल अत्यंत कमनीय महाकुंडलिनी से संयुक्त जो आत्मा विराजमान है उसे जिन्होंने जान लिया है वे मुद्रासाधक है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

5- मैथुन :

यामल तत्रनुसार मैथुन,

शहस्त्रारे बिन्दु कुंडली मिलानाछिये।

मैथुन परम दिव्यं यातिनाम परिकीर्तित।।

अर्थात मूलाधार से उठकर कुंडलिनी रूपी शक्ति का शहस्त्रार स्थित परम ब्रह्म शिव से सायुज्य ही मैथुन है। तन्त्र शास्त्र में सृष्टि और संहार के विषय में चिन्तन करना मैथुन कहलाता है। पराशक्ति और जिव के संयोग को भी मैथुन कहते हैं। मात्र स्त्री के साथ सम्भोग करने वाले को स्त्री निषेवक कहते है न की मैथुन साधक। मैथुन परम तत्व है जो सृष्टि स्थिति तथा संहार का कारण है। सुदुर्लभ ब्रह्म ज्ञान की सिद्धि मैथुन से ही होती है। मैथुन का गुह्य अर्थ समाधि है जिस अवस्था में योगी ईश्वर की स्तुति तथा सृष्टि और संहार के चिन्तन में अपने को भी भूल जाता है।

यहाँ मैथुन के गलत अर्थ को धारण करने वाले कामवासना से पीड़ित मनुष्य का साधना-जगत में, भला प्रवेश कैसे हो सकता है? जैसा कि कुलार्णव तन्त्र में कहा भी गया है:

यावत कामादि दीप्येत यावत् संसारवासना ।

यावदिन्द्रियचापल्य तावत्तत्त्वकथा कुतः ।।

अर्थात काम या सांसारिक वासनाओं से पीडित मानव की जब तक इन्द्रियायें चंचल रहती हैं, तब उसे तत्व ज्ञान भला कहाँ से प्राप्त हो सकता है?

तंत्रयोग सम्बंधित सामाजिक भ्रांतियों का दूसरा एक प्रमुख कारण हमारा नाट्य शास्त्र भी कहा जा सकता है। हमने अक्सर सुना है कि नाटक हमारे समाज का आयना होते हैं। नाटक / कहानियाँ समाज के हर वर्ग हर उम्र के लोगों द्वारा रोचकता से पड़ा भी जाता है। तथापि कुछेक नाटककार जब कहानियों मे कहीं-कहीं तांत्रिकों की चर्चा करते हैं तो वह भी सामन्य सामाजिक दृष्टीकोण का प्रयोग कर जाते हैं। संभवत वह उस समय मे तांत्रिकों की आडम्बरता के कारण हो तथा यह भी आवश्यक नही कि हर कोई नाटककार हर विषय की रहस्यता से परिचित हो।

यदि केवल संस्कृत साहित्य में नाटकीय ग्रन्थों का अवलोकन करें तो हम तन्त्रयोग की अवधारणा को तत्तत्कालानुसार उपलब्ध पायेंगें। अनेक स्थानों पर आचार्यों ने अपनी अपनी रचनाओं में तन्त्रयोग की मुक्तकन्ठ से चर्चा की है और इसे जीवंत बनाये रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। यथा "महाकवि भवभूति" विरचित "मालतीमाधव" जिसके पंचम अंक में उन्होने आकाश मार्ग से एक भयंकर और उज्ज्वल वेश वाली कपालकुण्डा का प्रवेश कराकर उसकी चर्चा में कहा कि-

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

षडधिकदशनाडीचक्रमध्यस्थितात्मा ।
हृदि विनिहितरूपः सिद्धिदस्ताद्विदां यः ।।
अविचलितमनोभिः साधकैर्मृग्यमाणः ।
स जयति परिणद्धः शक्तिभिः शक्तिनाथः ।।[5]

अर्थात- (कपालकुण्डा के वचन) जो इडा-पिंगला आदि प्रधान षोडश नाडियों के मध्य में स्वरूपतः निवास करते हुए उनके ज्ञाता जनों के हृदय में अपने आकार को स्थापित कर उन्हें अणिमा आदि सिद्धियों प्रदान करते है और अपनें स्थिर चित्त से ढूँढे जाते है तथा ज्ञान, इच्छा और क्रिया रूप अथवा ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों से व्याप्त हैं, ऐसे शक्तिनाथ भगवान सदाशिव भूत भविष्य आदि तीनों कालों में लोकोत्तर रूप से निवास करते हैं।

उक्त कपाल कुण्डा के पात्र के माध्यम से महाकवि भवभूति द्वारा हठयोग के मूल सिद्धान्तों और तन्त्र की विमर्श शक्ति का चित्रण कर रहे हैं। जो तन्त्रयोग के अनभिज्ञ पाठकों को इस माध्यम से प्राप्त होता है। इसी प्रकार "महाकवि विशाखदत्त" प्रणीत "मुद्राराक्षस" के द्वितीय अक में भी तन्त्रयोग के दर्शन होते हैं।

यथा-

जानन्ति तन्त्रयुक्ति यथास्थित मण्डलमभिलिखन्ति ।
ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति ।।[6]

अर्थात- (अहितुण्डिक-एक सपेरा पात्र) जो लोग तन्त्रयुक्ति विषौषधि का प्रयोग तथा राजतन्त्र को चलाना जानता है एवं यथोचित मण्डल (महेन्द्र आदि देवताओं के मण्डल) को चित्रित करने अथवा राजतन्त्र की कल्पना करने में समर्थ है, ऐसे लोग ही सर्प अथवा नृपति के साथ व्यवहार कर सकते है।

यहाँ कवि द्वारा पात्र के माध्यम से तन्त्र एवं यन्त्र (मण्डलाकृतियों) के विशेषज्ञों की अर्थात तन्त्रयोग साधकों की प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार महाकवि "श्रीराजशेखर विरचित कर्पूरमन्जरी में एक स्थान पर कवि ने तत्र की चर्चा में तत्र का स्वरूप पर प्रकाश डाला है यथा

मन्त्रों न तन्त्र न च किमपि ज्ञान ध्यानन्च नो किमपि गुरुप्रसादात।
मद्य पिबामो महिला रमयामो मोक्षन्च यामः कुलमार्गलग्ना ।।
रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा महा मास पीयते खाद्यते च।
भिक्षा भोज्य चर्मखण्डनच शय्या कौलो धर्मः कस्य नो भाति रम्यः ?।।
मुक्तिं भणन्ति हरिब्रम्हमुखादिदेवा ध्यानेन वेदपठनेन क्रतुक्रियाभिः ।
एकेन केवलमुमादयितेन दृष्टो मोक्ष सम सुरतकेलिसुरारसैः ।।[7]

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, February 2023

अर्थात- (भैरवानन्द एक तांत्रिक पात्र)- यहाँ पर आचार्य राजशेखर द्वारा एक तांत्रिक पात्र के अभिकथन से उसके चरित्र का वर्णन कियाक जा रहा है-न कोई मन्त्र जानता हूँ, न कोई शास्त्र जानता हूँ, गुरु मत के अनुसार कोई ध्यान अथवा समाधि लगाना भी नहीं जानता हूँ। शराब पीते हैं, दूसरो की स्त्रियों के साथ सहवास करते हैं और मोक्ष पाते हैं यही हमारा कुलाचार है और रंडा (विधवा), चंडा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियाँ हमारी धर्मपत्नियों है। भीक्षा का अन्न हमारा भोजन है, चर्मखण्ड हमारी शययया है, मद्य पिते हैं और मांस खाते हैं। हमारा यह कुलक्रम से आया हुआ धर्म किसको अच्छा नहीं लगता है, अर्थत सबको अच्छा लगता है विष्णु, ब्रम्हा इत्यदि देवता ध्यान, वेदपाठ तथा यज्ञादिको के अनुष्ठान से मोक्ष की प्राप्ति बताते हैं, केवल शिवजी ने सुरत और सुरापान से मोक्ष की प्राप्ति बतायी है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में नाटकों के माध्यम से भी हमे तन्त्रयोग की अवधारणा का ज्ञान होता है। हमारे आचार्यों के ज्ञान का यह सर्वागीण विकास अतुलनीय एवं प्रशंसनीय है। परन्तु सहित्य के इन उपरोक्त कथानकों में कुछ दोष भी दृष्टिगोचर होते हैं। कथावस्तुओं में अप्राकृत घटनाओं, जैसे- शमशान के प्रेतो. कापालिकों की विभत्स क्रियाएं, कन्याओं के हरण, पर स्त्री के साथ सैहवास, मदिरापान, चर्मखण्ड पर सोना, मास भक्षण आदि का वर्णन इस ढंग से तथा विस्तृत रूप से किया गया है कि दर्शक को अनकी यथार्थता पर संदेह होने लगता है तथा तत्रयोग के अलौकिक, तथा अध्यात्मिक पक्ष से जन सामान्य सर्वथा वच्छित रह जाते है आवश्यकता है कि इसके सही पहलु को समाज जाने और इसके असल स्वरूप से अवगत होकर लाभान्वित हो। यहाँ साहित्याचार्यों के तत्र संबंधीत ज्ञान पर कोई शंका नहीं है वह तो दोषज्ञ हैं। पाठको को इसके ममें को जानना अवश्यक है। अतः आज आवश्यकता है कि तत्रयोग के सही स्वरूप से आज समाज परिचित होकर उससे लाभान्वित हो सकें। सुधिजन यह भलीभांति जानते हैं कि यह आत्मशुद्धि एक सर्वोतम सरल माध्यम है केवल आवश्यकता सही मार्ग में चलने की है।

संदर्भ

[1]. निरंजनानंद, स्वामी: तंत्र, योग एवं मंत्र, योग विद्या: अंक-3 मई, पृ.सं. 32.

[2]. निरंजनानंद, स्वामी: तंत्र, योग एवं मंत्र, योग विद्या, अक-3 मई, पृ.स. 33.

[3]. सिंह, रामहर्ष, योग एव यौगिक चिकित्सा पृ.सं.64.

[4]. सिह, रामहर्ष, योग एवं यौगिक चिकित्सा पृसं 64.

[5]. मालतीमाधव, 5/1.

[6]. मुद्राराक्षस, 1/2

[7]. कर्पूरमन्जरी, 2/22-24.